॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कृष्णयजुर्वेदीय

कैवल्योपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

आत्माका स्वरूप तथा उसे जाननेका उपाय

महर्षि आश्वलायन भगवान् प्रजापति ब्रह्माजीके पास विधिपूर्वक समिधा हाथमें लेकर गये और बोले, 'भगवन्! सदा संतजनोंके द्वारा परिसेवित, अत्यन्त गोप्य तथा अतिशय श्रेष्ठ उस ब्रह्मविद्याका मुझे उपदेश कीजिये, जिसके द्वारा विद्वान् लोग शीघ्र ही सारे पापोंको नष्ट करके परात्पर पुरुष—परब्रह्मको प्राप्त होते हैं।' ब्रह्माजीने उन महर्षिसे कहा—'आश्वलायन! तुम उस परात्पर तत्त्वको श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और योगके द्वारा जाननेका यत्न करो। उसकी प्राप्ति न कर्मके द्वारा होती है, न संतान अथवा धनके द्वारा। ब्रह्मज्ञानियोंने केवल त्यागके द्वारा अमृतत्वको प्राप्त किया है। स्वर्गलोकसे भी ऊपर गुहामें अर्थात् बुद्धिके गह्वरमें स्थित होकर जो ब्रह्मलोक प्रकाशित है, उसमें यति—संयमशील योगीजन प्रवेश करते हैं। जिन्होंने वेदान्तके सविशेष ज्ञानसे तथा श्रवण, मनन और निदिध्यासनके द्वारा परम तत्त्वका निश्चय कर लिया है, वे शुद्ध अन्तःकरणवाले योगीजन संन्यास-योगके द्वारा ब्रह्मलोकमें जाकर कल्पके अन्तमें अमृतस्वरूप होकर मुक्त हो जाते हैं। स्नानादिसे शुद्ध होनेके अनन्तर निर्जन स्थानमें सुखसे बैठकर, ग्रीवा, सिर और शरीरको सीधे रखकर सारी इन्द्रियोंका निरोध करके भक्तिपूर्वक अपने गुरुको प्रणाम करके संन्यास-आश्रममें स्थित योगीलोग अपने हृदय-कमलमें रजोगुणरहित, विशुद्ध, दुःख-शोकातीत आत्मतत्त्वका विशदरूपसे चिन्तन करते हैं। इस प्रकार जो अचिन्त्य है, अव्यक्त और अनन्तस्वरूप है, कल्याणमय है, प्रशान्त है, अमृत है; जो ब्रह्म अर्थात् निखिल ब्रह्माण्डका मूल कारण है; जिसका आदि, मध्य और अन्त नहीं; जो एक अर्थात् अद्वितीय है, विभु और चिदानन्द है, रूपरहित और अद्भुत है, उस उमासहित अर्थात् ब्रह्मविद्याके साथ परमेश्वरको, समस्त चराचरके स्वामीको, प्रशान्तस्वरूप, त्रिलोचन, नीलकण्ठ महादेव अर्थात् परात्पर परब्रह्मको—जो सब भूतोंका मूल कारण है, सबका साक्षी है तथा अविद्यासे परे प्रकाशमान हो रहा है, उसको मुनिलोग ध्यानके द्वारा प्राप्त करते हैं॥ १—७॥

'वही ब्रह्मा है, वही शिव है, वही इन्द्र है, वही अक्षर—अविनाशी परमात्मा है, वही विष्णु है; वह प्राण है, वह काल है, अग्नि है, वह चन्द्रमा है। जो कुछ हो चुका है और जो भविष्यमें होनेवाला है, वह सब वही है; उस सनातन तत्त्वको जानकर प्राणी मृत्युके परे चला जाता है। इसके अतिरिक्त मुक्तिका दूसरा कोई मार्ग नहीं है। जो आत्माको सब भूतोंमें देखता है तथा सब भूतोंको आत्मामें देखता है, वह परब्रह्मको प्राप्त करता है; दूसरे किसी उपायसे नहीं। आत्मा—अन्तःकरणको नीचेकी अरणि तथा प्रणवको ऊपरकी अरणि बनाकर ज्ञानीजन ज्ञानरूपी मन्थनके अभ्यासद्वारा संसार-बन्धनको नष्ट कर देते हैं—ज्ञानाग्निमें जला डालते हैं। वही प्राणी मायाके वश अत्यन्त मोहग्रस्त होकर शरीरको ही अपना स्वरूप मान सब प्रकारके कर्मोंको करता है। वही जाग्रत् अवस्थामें स्त्री, अन्न-पान आदि नाना प्रकारके भोगोंको भोगता हुआ परितृप्ति लाभ करता है। वही जीव स्वप्नावस्थामें अपनी मायासे कल्पित जीवलोकमें सुख-दुःखका भोक्ता बनता है और सुषुप्तिकालमें सारे मायिक प्रपञ्चके विलीन होनेपर

वह तमोगुणसे अभिभूत होकर सुख-स्वरूपको प्राप्त होता है। पुनः जन्मान्तरोंके कर्मोंकी प्रेरणासे वह जीव सुषुप्तिसे स्वप्न-जगत्में उतरता है और उसके बाद जाग्रत्-अवस्थामें आता है। इस प्रकार स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीररूपी तीन पुरोंमें जो जीव क्रीडा करता है, उसीसे यह सारा प्रपञ्च-वैचित्र्य उत्पन्न होता है॥ ८—१४॥

'इस समस्त प्रपञ्चका आधार आनन्दस्वरूप अखण्ड बोध है—जिसमें स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीररूपी तीनों पुर लयको प्राप्त होते हैं। इसीसे प्राण उत्पन्न होता है, मन और सारी इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं; आकाश, वायु, अग्नि, जल और सारे विश्वको धारण करनेवाली पृथ्वी उत्पन्न होती है। जो परब्रह्म सबका आत्मा है, समस्त कार्य-कारणरूप विश्वका महान् आयतन अर्थात् आधार है, जो सूक्ष्म-से-सूक्ष्म है, अविनाशी है, वह तुम्हीं हो, तुम वही हो। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति आदि जो प्रपञ्च भासमान है, वह ब्रह्मस्वरूप है और वही मैं हूँ—यों जानकर जीव सारे बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। तीनों धाम अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिमें जो कुछ भोक्ता, भोग्य और भोग हैं, उनसे विलक्षण साक्षी, चिन्मात्रस्वरूप, सदाशिव मैं हूँ। मुझमें ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है, मुझमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है, मुझमें ही सब लयको प्राप्त होता है; वह अद्वय ब्रह्मस्वरूप मैं ही हूँ। मैं अणुसे भी अणु हूँ, इसी प्रकार मैं महान्से भी महान् हूँ; यह विचित्र विश्व मेरा ही स्वरूप है। मैं पुरातन पुरुष हूँ, मैं ईश्वर हूँ, मैं हिरण्यमय पुरुष ब्रह्मा हूँ, मैं शिवस्वरूप हूँ। वह पाणि-पाद-विहीन, अचिन्त्यशक्ति परब्रह्म मैं हूँ। मैं नेत्रोंके बिना देखता हूँ, कानोंके बिना सुनता हूँ, बुद्धि आदिसे पृथक् होकर मैं ही जानता हूँ, मुझको जाननेवाला कोई नहीं है; मैं सदा चित्स्वरूप हूँ। समस्त वेद मेरा ही ज्ञान कराते हैं; मैं ही वेदान्तका कर्ता हूँ, वेदवेत्ता भी मैं ही हूँ। मुझे पुण्य-पाप नहीं लगते, मेरा कभी नाश नहीं होता और न जन्म ही होता है और न मेरे शरीर, मन-बुद्धि और इन्द्रियाँ ही हैं। मेरे लिये न भूमि है न जल है, न अग्नि है, न वायु और न आकाश ही है।' जो इस प्रकार गुहा—बुद्धिके गह्वरमें स्थित, निष्कल (अवयवहीन) और अद्वितीय, सदसत्से परे सबके साक्षी मेरे परमात्मस्वरूपको जानता है, वह शुद्ध परमात्मस्वरूपको प्राप्त होता है। जो शतरुद्रियका पाठ करता है, वह अग्निपूत होता है, वायुपूत होता है, आत्मपूत होता है, सुरापानके दोषसे छूट जाता है, ब्रह्महत्याके दोषसे मुक्त हो जाता है; वह स्वर्णकी चोरीके पापसे छूट जाता है, वह शुभाशुभ कर्मोंसे उद्धार पाता है, भगवान् सदाशिवके आश्रित हो जाता है तथा अविमुक्तस्वरूप हो जाता है। अतएव जो आश्रमसे अतीत हो गये हैं, उन परमहंसोंको सदा-सर्वदा अथवा कम-से-कम एक बार इसका पाठ अवश्य करना चाहिये। इससे उस ज्ञानकी प्राप्ति होती है, जो भवसागरका नाश कर देता है। इसलिये इसको इस प्रकार जानकर मनुष्य कैवल्यरूप मुक्तिको प्राप्त होता है, कैवल्य-पदको प्राप्त होता है॥ १५—२५॥

॥ कृष्णयजुर्वेदीय कैवल्योपनिषद् समाप्त ॥

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

ज्ञानमयी दृष्टि

'दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत्।'

'दृष्टिको ज्ञान (ब्रह्म)-मयी करके जगत्को ब्रह्ममय देखे।'